वैश्वीकरण के दौर में श्रम का समाजशास्त्र: चुनौतियाँ और परिवर्तन

***मल्लू राम मीना**

सारांश

वैश्वीकरण ने श्रम के स्वरूप और उसकी सामाजिक-आर्थिक भूमिका में गहरे परिवर्तन किए हैं। यह प्रक्रिया विश्व की अर्थव्यवस्थाओं को आपस में जोड़ते हुए श्रम बाजार को भी अंतरराष्ट्रीय स्तर पर विस्तृत करती है। इसके परिणामस्वरूप रोजगार के नए अवसर उत्पन्न हुए हैं, लेकिन साथ ही श्रमिकों के सामने कई चुनौतियाँ भी आई हैं। वैश्वीकरण के कारण रोजगार का स्वरूप अधिक लचीला और अस्थायी हो गया है। गिग इकॉनमी, अनुबंध आधारित कार्य और असंगठित क्षेत्र का विस्तार श्रमिकों की सुरक्षा को कम करता है। इसके साथ ही, तकनीकी विकास और स्वचालन के कारण पारंपरिक नौकरियाँ समाप्त हो रही हैं, जिससे बेरोजगारी और अधरोजगारी की समस्या बढ़ रही है। सामाजिक दृष्टि से, वैश्वीकरण ने असमानताओं को भी बढ़ाया है। उच्च कौशल वाले श्रमिकों को अधिक अवसर मिलते हैं, जबकि निम्न कौशल वाले श्रमिक शोषण और असुरक्षा का सामना करते हैं। ट्रेड यूनियनों की कमजोर होती भूमिका ने श्रमिकों की सामूहिक शक्ति को भी कम किया है। इस प्रकार, वैश्वीकरण श्रम के क्षेत्र में अवसर और चुनौतियाँ दोनों प्रस्तुत करता है, जिन्हें संतुलित नीतियों के माध्यम से समझना और संबोधित करना आवश्यक है।

मुख्य शब्द: वैश्वीकरण, गिग इकॉनमी, तकनीकी विकास, उदारीकरण, वैश्विक प्रतिस्पर्धा।

1. प्रस्तावना

वैश्वीकरण के दौर में श्रम का समाजशास्त्र एक महत्वपूर्ण अध्ययन क्षेत्र के रूप में उभरा है, जो श्रमिकों की स्थिति, कार्य संबंधों और सामाजिक-आर्थिक संरचना में हो रहे परिवर्तनों को समझने का प्रयास करता है। श्रम केवल आर्थिक गतिविधि का साधन नहीं है, बल्कि यह सामाजिक संबंधों, पहचान और जीवन-स्तर से भी गहराई से जुड़ा हुआ है। इसलिए, श्रम के समाजशास्त्र का अध्ययन यह स्पष्ट करता है कि किस प्रकार कार्य और श्रमिकों की भूमिका समय के साथ बदलती रही है और वर्तमान वैश्विक परिप्रेक्ष्य में यह किस दिशा में विकसित हो रही है। वैश्वीकरण एक ऐसी प्रक्रिया है, जिसके माध्यम से विश्व की अर्थव्यवस्थाएँ, समाज और संस्कृतियाँ एक-दूसरे से अधिक जुड़ती जा रही हैं। उदारीकरण, निजीकरण और तकनीकी प्रगति ने इस प्रक्रिया को गति दी है। इसका महत्व इस बात में निहित है कि इसने न केवल व्यापार और निवेश के अवसरों को बढ़ाया है, बल्कि श्रम बाजार को भी अंतरराष्ट्रीय स्तर पर जोड़ दिया है। आज श्रमिक केवल स्थानीय या राष्ट्रीय स्तर पर ही नहीं, बल्कि वैश्विक प्रतिस्पर्धा का हिस्सा बन गए हैं। इसके परिणामस्वरूप रोजगार के नए अवसर उत्पन्न हुए हैं, लेकिन साथ ही अस्थिरता, असुरक्षा और असमानता जैसी समस्याएँ भी सामने आई हैं।

श्रम के समाजशास्त्र का उद्देश्य श्रम से जुड़े सामाजिक संबंधों, कार्य परिस्थितियों, श्रमिकों की स्थिति और उनके

अधिकारों का अध्ययन करना है। यह अध्ययन यह समझने में मदद करता है कि किस प्रकार आर्थिक नीतियाँ, तकनीकी परिवर्तन और सामाजिक संरचनाएँ श्रम के स्वरूप को प्रभावित करती हैं। वैश्वीकरण के संदर्भ में यह और भी महत्वपूर्ण हो जाता है, क्योंकि नई उत्पादन प्रणालियाँ, आउटसोर्सिंग, गिग इकॉनमी और असंगठित क्षेत्र का विस्तार श्रम के पारंपरिक स्वरूप को बदल रहे हैं।

इस शोध-पत्र का मुख्य उद्देश्य वैश्वीकरण के दौर में श्रम के समाजशास्त्र का विश्लेषण करना है, विशेष रूप से यह समझना कि इस प्रक्रिया ने श्रमिकों के जीवन, कार्य परिस्थितियों और सामाजिक संरचना को किस प्रकार प्रभावित किया है। इसके अंतर्गत रोजगार के स्वरूप, श्रमिक वर्ग की संरचना और श्रम संबंधों में आए परिवर्तनों का अध्ययन किया जाएगा।

इस अध्ययन के प्रमुख शोध प्रश्न हैं:

(1) वैश्वीकरण ने श्रम के स्वरूप और संरचना को किस प्रकार प्रभावित किया है?

(2) श्रमिकों के सामने प्रमुख चुनौतियाँ क्या हैं?

(3) क्या वैश्वीकरण ने श्रमिकों के लिए नए अवसर भी उत्पन्न किए हैं?

(4) श्रम के समाजशास्त्र के संदर्भ में इन परिवर्तनों की क्या व्याख्या की जा सकती है?

इस प्रकार, यह प्रस्तावना शोध के विषय, उद्देश्य और दिशा को स्पष्ट करते हुए आगे के विश्लेषण के लिए आधार प्रदान करती है।

2. सैद्धांतिक रूपरेखा

श्रम के समाजशास्त्र को समझने के लिए विभिन्न सैद्धांतिक दृष्टिकोण महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इनमें मार्क्सवादी, उदारवादी तथा नव-उदारवादी दृष्टिकोण प्रमुख हैं, जो श्रम, उत्पादन संबंधों और वैश्वीकरण के प्रभावों की अलग-अलग व्याख्या करते हैं।

मार्क्सवादी दृष्टिकोण के अनुसार श्रम समाज की आर्थिक संरचना का केंद्रीय तत्व है। इस दृष्टिकोण में श्रमिक और पूंजीपति के बीच संबंध शोषण पर आधारित माना जाता है। श्रमिक अपने श्रम के माध्यम से उत्पादन करता है, लेकिन उत्पादन के साधनों पर नियंत्रण पूंजीपति वर्ग के पास होता है, जिससे श्रमिक को उसके श्रम का पूरा मूल्य नहीं मिल पाता। वैश्वीकरण के संदर्भ में मार्क्सवादी विचारधारा यह तर्क देती है कि पूंजी का वैश्विक विस्तार श्रमिकों के शोषण को और बढ़ाता है। बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ सस्ते श्रम की खोज में विभिन्न देशों में उत्पादन स्थापित करती हैं, जिससे श्रमिकों की स्थिति अस्थिर और असुरक्षित हो जाती है।

इसके विपरीत, उदारवादी दृष्टिकोण श्रम को एक स्वतंत्र और स्वायत्त इकाई के रूप में देखता है, जहाँ बाजार की शक्तियाँ मांग और आपूर्ति के आधार पर श्रम का मूल्य निर्धारित करती हैं। इस दृष्टिकोण के अनुसार वैश्वीकरण रोजगार के नए अवसर उत्पन्न करता है, प्रतिस्पर्धा को बढ़ावा देता है और आर्थिक विकास को गति देता है। उदारवादी विचारधारा यह मानती है कि खुला बाजार और मुक्त व्यापार श्रमिकों के लिए लाभकारी हो सकते हैं, क्योंकि इससे उत्पादन और निवेश में वृद्धि होती है।

नव-उदारवादी दृष्टिकोण उदारवादी विचारधारा का आधुनिक रूप है, जो राज्य के हस्तक्षेप को सीमित करने और बाजार की स्वतंत्रता को बढ़ावा देने पर जोर देता है। इस दृष्टिकोण में श्रम बाजार को अधिक लचीला बनाने की आवश्यकता बताई जाती है, जिससे रोजगार के अवसर बढ़ सकें। हालांकि, इसके परिणामस्वरूप अस्थायी रोजगार, अनुबंध आधारित कार्य और सामाजिक सुरक्षा में कमी जैसी समस्याएँ भी सामने आती हैं। वैश्वीकरण और श्रम के संबंध की सैद्धांतिक व्याख्या इन सभी दृष्टिकोणों के माध्यम से की जा सकती है। जहाँ मार्क्सवादी दृष्टिकोण शोषण और असमानता को उजागर करता है, वहीं उदारवादी और नव-उदारवादी दृष्टिकोण अवसरों और विकास की संभावनाओं पर बल देते हैं। इस प्रकार, श्रम के समाजशास्त्र का समग्र विश्लेषण इन विभिन्न दृष्टिकोणों के समन्वय से ही संभव है।

3. वैश्वीकरण और श्रम का स्वरूप

वैश्वीकरण ने श्रम के स्वरूप और उसकी प्रकृति में गहरे और व्यापक परिवर्तन किए हैं। यह एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके माध्यम से विश्व की अर्थव्यवस्थाएँ, उत्पादन प्रणाली और श्रम बाजार आपस में अधिक जुड़ गए हैं। इसके परिणामस्वरूप श्रम अब केवल स्थानीय या राष्ट्रीय सीमाओं तक सीमित नहीं रह गया, बल्कि एक वैश्विक परिघटना बन गया है। वैश्वीकरण की प्रक्रिया की प्रमुख विशेषताओं में मुक्त व्यापार, पूंजी का अंतरराष्ट्रीय प्रवाह, बहुराष्ट्रीय कंपनियों का विस्तार और तकनीकी प्रगति शामिल हैं। इन तत्वों ने उत्पादन और वितरण की पारंपरिक प्रणालियों को बदल दिया है। कंपनियाँ अब उत्पादन के विभिन्न चरणों को अलग-अलग देशों में स्थापित करती हैं, जहाँ उन्हें सस्ता श्रम और अनुकूल नीतियाँ मिलती हैं। इस प्रकार, वैश्वीकरण ने श्रम को एक प्रतिस्पर्धात्मक और गतिशील संसाधन में परिवर्तित कर दिया है।

श्रम बाजार का अंतरराष्ट्रीयकरण वैश्वीकरण की एक महत्वपूर्ण विशेषता है। आज श्रमिकों को केवल अपने देश में ही नहीं, बल्कि वैश्विक स्तर पर भी प्रतिस्पर्धा करनी पड़ती है। आउटसोर्सिंग, ऑफशोरिंग और प्रवासी श्रम के बढ़ते प्रवाह ने श्रम बाजार को वैश्विक बना दिया है। इसके कारण रोजगार के नए अवसर उत्पन्न हुए हैं, लेकिन साथ ही श्रमिकों के लिए अस्थिरता और असुरक्षा भी बढ़ी है। विशेष रूप से विकासशील देशों में सस्ते श्रम का उपयोग करके कंपनियाँ अधिक लाभ कमाने का प्रयास करती हैं, जिससे श्रमिकों के अधिकारों और कार्य स्थितियों पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। तकनीकी परिवर्तन ने भी श्रम के स्वरूप को गहराई से प्रभावित किया है। सूचना और संचार प्रौद्योगिकी के विकास ने कार्य के तरीकों को बदल दिया है। अब डिजिटल प्लेटफॉर्म, गिग इकॉनमी और फ्रीलांस कार्य तेजी से बढ़ रहे हैं। स्वचालन और कृत्रिम बुद्धिमत्ता के कारण कई पारंपरिक नौकरियाँ समाप्त हो रही हैं, जबकि नई प्रकार की नौकरियाँ उत्पन्न हो रही हैं। इससे श्रमिकों के लिए कौशल का महत्व बढ़ गया है और उन्हें लगातार अपने कौशल को अद्यतन करना पड़ता है।

इस प्रकार, वैश्वीकरण ने श्रम को अधिक लचीला, गतिशील और प्रतिस्पर्धात्मक बना दिया है, लेकिन इसके साथ ही श्रमिकों के लिए नई चुनौतियाँ भी उत्पन्न की हैं, जो उनके सामाजिक और आर्थिक जीवन को प्रभावित करती हैं।

4. श्रम के क्षेत्र में प्रमुख परिवर्तन

वैश्वीकरण के प्रभाव से श्रम के क्षेत्र में व्यापक और गहरे परिवर्तन देखने को मिले हैं। इन परिवर्तनों ने न केवल रोजगार के स्वरूप को बदला है, बल्कि श्रमिक वर्ग की संरचना और कार्य परिस्थितियों को भी प्रभावित किया है।

4.1 रोजगार के स्वरूप में बदलाव

वैश्वीकरण के दौर में रोजगार का स्वरूप पारंपरिक स्थायी नौकरियों से बदलकर अस्थायी, अनुबंध आधारित और लचीले रोजगार की ओर बढ़ गया है। पहले जहाँ लंबे समय तक एक ही संस्था में स्थायी नौकरी करना सामान्य माना जाता था, वहीं अब कंपनियाँ लागत कम करने के लिए अस्थायी और अनुबंधित कर्मचारियों को प्राथमिकता देती हैं। इससे श्रमिकों के लिए नौकरी की सुरक्षा कम हो गई है। इसके साथ ही, गिग इकॉनमी और फ्रीलांस कार्य का तेजी से विस्तार हुआ है। डिजिटल प्लेटफॉर्म के माध्यम से लोग अल्पकालिक कार्य कर रहे हैं, जैसे—ऑनलाइन सेवाएँ, डिलीवरी कार्य, और स्वतंत्र पेशेवर सेवाएँ। यह व्यवस्था कुछ हद तक लचीलापन और स्वतंत्रता प्रदान करती है, लेकिन इसमें सामाजिक सुरक्षा और स्थायित्व की कमी भी होती है।

4.2 श्रमिक वर्ग की संरचना में परिवर्तन

वैश्वीकरण के कारण श्रमिक वर्ग की संरचना में भी महत्वपूर्ण बदलाव आए हैं। संगठित क्षेत्र की तुलना में असंगठित क्षेत्र का विस्तार अधिक तेजी से हुआ है, जहाँ श्रमिकों को नियमित वेतन, सुरक्षा और कानूनी संरक्षण नहीं मिल पाता। असंगठित क्षेत्र में कार्यरत श्रमिकों की संख्या बढ़ने से उनकी आर्थिक और सामाजिक स्थिति अधिक अस्थिर हो गई है। इसके अलावा, महिला श्रमिकों और प्रवासी श्रमिकों की भूमिका भी बढ़ी है। महिलाओं की श्रम बाजार में भागीदारी बढ़ी है, विशेष रूप से सेवा और उत्पादन क्षेत्रों में। हालांकि, उन्हें अक्सर कम वेतन और असमान अवसरों का सामना करना पड़ता है। प्रवासी श्रमिक, जो रोजगार की तलाश में एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाते हैं, वैश्वीकरण के महत्वपूर्ण हिस्से बन गए हैं। लेकिन उन्हें भी असुरक्षित कार्य परिस्थितियों और सामाजिक सुरक्षा की कमी का सामना करना पड़ता है।

4.3 कार्य स्थितियों में परिवर्तन

कार्य स्थितियों में भी उल्लेखनीय परिवर्तन हुए हैं। कई क्षेत्रों में कार्य के घंटे अनियमित हो गए हैं और श्रमिकों पर अधिक उत्पादन का दबाव बढ़ा है। वेतन संरचना में भी असमानता देखी जाती है, जहाँ उच्च कौशल वाले श्रमिकों को अधिक लाभ मिलता है, जबकि निम्न कौशल वाले श्रमिकों की स्थिति अपेक्षाकृत कमजोर रहती है। श्रमिकों की सुरक्षा और अधिकारों में भी परिवर्तन आया है। वैश्वीकरण के कारण कई कंपनियाँ श्रम कानूनों को कमज़ोर करने या उनसे बचने की कोशिश करती हैं, जिससे श्रमिकों के अधिकार प्रभावित होते हैं। ट्रेड यूनियनों की भूमिका भी कमजोर हुई है, जिससे श्रमिकों की सामूहिक सौदेबाजी की क्षमता घट गई है। इस प्रकार, वैश्वीकरण ने श्रम के क्षेत्र में अनेक परिवर्तन लाए हैं, जो एक ओर नए अवसर प्रदान करते हैं, वहीं दूसरी ओर श्रमिकों के लिए नई चुनौतियाँ और असुरक्षाएँ भी उत्पन्न करते हैं।

5. वैश्वीकरण के दौर में श्रम की चुनौतियाँ

वैश्वीकरण ने जहाँ एक ओर श्रम बाजार को विस्तृत किया है, वहीं दूसरी ओर श्रमिकों के सामने अनेक नई चुनौतियाँ भी उत्पन्न की हैं। इन चुनौतियों का प्रभाव विशेष रूप से विकासशील देशों में अधिक स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। सबसे प्रमुख समस्या बेरोजगारी और अधरोजगारी की है। तकनीकी प्रगति और स्वचालन के कारण कई पारंपरिक नौकरियाँ समाप्त हो रही हैं, जिससे श्रमिकों के लिए रोजगार के अवसर सीमित हो गए हैं। इसके साथ ही, कई लोग अपनी योग्यता से कम स्तर के कार्य करने के लिए मजबूर हैं, जिसे अधरोजगारी कहा जाता है। यह स्थिति श्रमिकों की आय और जीवन स्तर को प्रभावित करती है।

श्रमिकों का शोषण और असमानता भी एक गंभीर चुनौती है। वैश्वीकरण के कारण कंपनियाँ लागत कम करने के लिए सस्ते श्रम का उपयोग करती हैं, जिससे श्रमिकों को कम वेतन और खराब कार्य परिस्थितियों में काम करना पड़ता है। उच्च कौशल वाले और निम्न कौशल वाले श्रमिकों के बीच आय और अवसरों में असमानता बढ़ती जा रही है। इससे सामाजिक और आर्थिक असंतुलन उत्पन्न होता है। सामाजिक सुरक्षा की कमी भी एक महत्वपूर्ण समस्या है। अस्थायी और अनुबंध आधारित रोजगार के बढ़ने से श्रमिकों को स्वास्थ्य बीमा, पेंशन और अन्य सामाजिक सुरक्षा सुविधाएँ नहीं मिल पातीं। विशेष रूप से असंगठित क्षेत्र के श्रमिक इन सुविधाओं से वंचित रहते हैं, जिससे उनका भविष्य असुरक्षित हो जाता है।

इसके अतिरिक्त, ट्रेड यूनियनों की भूमिका भी कमजोर होती जा रही है। वैश्वीकरण और निजीकरण के प्रभाव से श्रमिक संगठनों की शक्ति में कमी आई है, जिससे श्रमिक अपने अधिकारों के लिए प्रभावी ढंग से संघर्ष नहीं कर पाते। इससे उनकी सामूहिक सौदेबाजी की क्षमता घटती है और वे अधिक शोषण के शिकार बनते हैं। इस प्रकार, वैश्वीकरण के दौर में श्रम से जुड़ी ये चुनौतियाँ श्रमिकों की सामाजिक और आर्थिक स्थिति को प्रभावित करती हैं और इनके समाधान के लिए प्रभावी नीतियों की आवश्यकता है।

6. सामाजिक और आर्थिक प्रभाव

वैश्वीकरण के परिणामस्वरूप श्रम के क्षेत्र में हुए परिवर्तनों का व्यापक सामाजिक और आर्थिक प्रभाव पड़ा है। इन प्रभावों ने समाज की संरचना, वर्ग संबंधों और लोगों के जीवन स्तर को गहराई से प्रभावित किया है। सबसे पहले, सामाजिक असमानताओं में वृद्धि एक प्रमुख प्रभाव के रूप में सामने आई है। वैश्वीकरण ने जहाँ उच्च कौशल वाले और शिक्षित वर्ग के लिए नए अवसर पैदा किए हैं, वहीं निम्न कौशल वाले श्रमिकों को अपेक्षाकृत कम लाभ मिला है। इससे आय और अवसरों में असमानता बढ़ी है। शहरी और ग्रामीण क्षेत्रों, संगठित और असंगठित क्षेत्रों तथा पुरुष और महिला श्रमिकों के बीच भी अंतर स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। यह असमानता सामाजिक विभाजन को और गहरा करती है।

दूसरे, वर्ग संबंधों में भी महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए हैं। पारंपरिक वर्ग संरचना में बदलाव आया है, जहाँ एक ओर नए मध्यम वर्ग का विस्तार हुआ है, वहीं दूसरी ओर श्रमिक वर्ग अधिक अस्थिर और विभाजित हो गया है। गिग इकॉनमी, अनुबंध आधारित रोजगार और असंगठित क्षेत्र के विस्तार ने श्रमिक वर्ग की एकजुटता को कमजोर किया है। इसके कारण वर्ग संघर्ष का स्वरूप भी बदल गया है, जो अब अधिक बिखरा हुआ और जटिल हो गया है।

तीसरे, जीवन स्तर और कार्य-जीवन संतुलन पर भी वैश्वीकरण का प्रभाव पड़ा है। कुछ वर्गों के लिए आय और जीवन स्तर में सुधार हुआ है, लेकिन अधिकांश श्रमिकों के लिए कार्य के घंटे बढ़ गए हैं और नौकरी की अस्थिरता ने तनाव को बढ़ाया है। तकनीकी प्रगति के कारण कार्य और निजी जीवन के बीच की सीमाएँ धुंधली हो गई हैं, जिससे कार्य-जीवन संतुलन बनाए रखना कठिन हो गया है। इस प्रकार, वैश्वीकरण के सामाजिक और आर्थिक प्रभाव मिश्रित हैं—जहाँ यह कुछ लोगों के लिए अवसर और विकास लाता है, वहीं अन्य के लिए असमानता और असुरक्षा भी बढ़ाता है।

7. आलोचनात्मक मूल्यांकन

वैश्वीकरण के प्रभावों का मूल्यांकन करते समय यह स्पष्ट होता है कि इसके सकारात्मक और नकारात्मक दोनों पहलू हैं, विशेषकर श्रम के संदर्भ में। एक ओर वैश्वीकरण ने आर्थिक विकास, रोजगार के नए अवसर और तकनीकी प्रगति को बढ़ावा दिया है, वहीं दूसरी ओर इसने श्रमिकों के लिए असुरक्षा, असमानता और शोषण की स्थितियाँ भी उत्पन्न की हैं।

सकारात्मक पक्ष की बात करें तो वैश्वीकरण ने अंतरराष्ट्रीय स्तर पर रोजगार के अवसरों को बढ़ाया है। नई तकनीकों और डिजिटल प्लेटफॉर्म के विकास ने कार्य के नए रूपों को जन्म दिया है, जैसे—गिग इकॉनमी और फ्रीलांस कार्य। इससे कई लोगों को लचीलापन और आय के वैकल्पिक स्रोत मिले हैं। इसके अतिरिक्त, वैश्विक प्रतिस्पर्धा ने उत्पादन की दक्षता को बढ़ाया है और कुछ क्षेत्रों में श्रमिकों के कौशल विकास को भी प्रोत्साहित किया है।

इसके विपरीत, नकारात्मक प्रभाव अधिक गंभीर और व्यापक हैं। वैश्वीकरण के कारण रोजगार की अस्थिरता बढ़ी है और स्थायी नौकरियों में कमी आई है। श्रमिकों को कम वेतन, लंबे कार्य घंटे और खराब कार्य परिस्थितियों का सामना करना पड़ता है। असंगठित क्षेत्र का विस्तार और सामाजिक सुरक्षा की कमी ने श्रमिकों की स्थिति को और कमजोर किया है। इसके साथ ही, आय और अवसरों में असमानता बढ़ी है, जिससे सामाजिक विभाजन गहरा हुआ है।

विभिन्न समाजशास्त्रीय दृष्टिकोणों से इन प्रभावों का विश्लेषण अलग-अलग तरीके से किया जाता है। मार्क्सवादी दृष्टिकोण वैश्वीकरण को पूंजीवादी विस्तार के रूप में देखता है, जो श्रमिकों के शोषण और वर्ग असमानता को बढ़ाता है। इसके अनुसार, वैश्वीकरण पूंजीपतियों के हितों को प्राथमिकता देता है और श्रमिकों को हाशिए पर रखता है। उदारवादी दृष्टिकोण इसके विपरीत वैश्वीकरण को आर्थिक विकास और प्रगति का माध्यम मानता है। यह मानता है कि खुला बाजार और मुक्त व्यापार रोजगार और निवेश के अवसर बढ़ाते हैं। वहीं, नव-उदारवादी दृष्टिकोण श्रम बाजार की लचीलेपन पर जोर देता है, लेकिन इसकी आलोचना इस बात के लिए की जाती है कि यह श्रमिकों की सुरक्षा और अधिकारों की उपेक्षा करता है। इस प्रकार, वैश्वीकरण का समग्र मूल्यांकन यह दर्शाता है कि इसके लाभ और हानियाँ दोनों हैं, और संतुलित नीतियों के माध्यम से ही इसके नकारात्मक प्रभावों को कम किया जा सकता है।

8. समाधान और नीतिगत सुझाव

वैश्वीकरण के दौर में श्रमिकों के सामने उत्पन्न चुनौतियों का समाधान प्रभावी नीतिगत हस्तक्षेप के माध्यम से ही संभव है। इसके लिए सरकार, उद्योग और समाज के बीच समन्वित प्रयासों की आवश्यकता है, ताकि श्रमिकों के अधिकारों की रक्षा हो सके और उन्हें सुरक्षित एवं सम्मानजनक कार्य वातावरण मिल सके। सबसे पहले, श्रम कानूनों में सुधार अत्यंत आवश्यक है। वर्तमान परिस्थितियों में श्रम कानूनों को इस प्रकार संशोधित किया जाना चाहिए कि वे बदलते रोजगार स्वरूप—जैसे अनुबंध आधारित कार्य, गिग इकॉनमी और असंगठित क्षेत्र—को ध्यान में रखें। कानूनों को अधिक पारदर्शी, प्रभावी और श्रमिकों के हितों के अनुरूप बनाया जाना चाहिए। साथ ही, उनके सख्त क्रियान्वयन पर भी जोर देना आवश्यक है, ताकि श्रमिकों का शोषण रोका जा सके।

दूसरे, सामाजिक सुरक्षा योजनाओं का विस्तार किया जाना चाहिए। श्रमिकों को स्वास्थ्य बीमा, पेंशन, बेरोजगारी भत्ता और अन्य सुरक्षा सुविधाएँ उपलब्ध कराना आवश्यक है, विशेषकर असंगठित क्षेत्र के श्रमिकों के लिए। सरकार को ऐसी योजनाएँ विकसित करनी चाहिए जो सभी श्रमिकों को कवर करें और उनकी आर्थिक असुरक्षा को कम करें। इससे श्रमिकों के जीवन स्तर में सुधार होगा और वे अधिक सुरक्षित महसूस करेंगे।

तीसरे, कौशल विकास और शिक्षा पर विशेष ध्यान देना आवश्यक है। वैश्वीकरण और तकनीकी परिवर्तन के कारण श्रम बाजार की मांग तेजी से बदल रही है, जिसके अनुरूप श्रमिकों को नए कौशल सीखने की आवश्यकता है। इसके लिए प्रशिक्षण कार्यक्रमों, व्यावसायिक शिक्षा और तकनीकी शिक्षा को बढ़ावा देना चाहिए। इससे श्रमिकों की रोजगार क्षमता बढ़ेगी और वे नई परिस्थितियों के अनुकूल खुद को ढाल सकेंगे। अंततः, इन सभी उपायों का उद्देश्य एक ऐसा श्रम बाजार विकसित करना होना चाहिए, जो न केवल आर्थिक रूप से उत्पादक हो, बल्कि सामाजिक रूप से न्यायपूर्ण और

समावेशी भी हो।

9. निष्कर्ष

इस शोध-पत्र में वैश्वीकरण के दौर में श्रम के समाजशास्त्र का व्यापक विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है। अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि वैश्वीकरण ने श्रम के स्वरूप, संरचना और कार्य संबंधों में महत्वपूर्ण परिवर्तन किए हैं। रोजगार के पारंपरिक रूपों में कमी आई है और अस्थायी, अनुबंध आधारित तथा गिग कार्य का विस्तार हुआ है, जिससे श्रमिकों की स्थिति अधिक अस्थिर हुई है। शोध प्रश्नों के संदर्भ में यह निष्कर्ष निकलता है कि वैश्वीकरण ने एक ओर नए रोजगार अवसर और तकनीकी विकास को बढ़ावा दिया है, वहीं दूसरी ओर बेरोजगारी, असमानता, शोषण और सामाजिक सुरक्षा की कमी जैसी चुनौतियाँ भी उत्पन्न की हैं। श्रम के समाजशास्त्र के दृष्टिकोण से ये परिवर्तन वर्ग संबंधों और सामाजिक संरचना को गहराई से प्रभावित करते हैं। भविष्य के अध्ययन के लिए यह आवश्यक है कि वैश्वीकरण के प्रभावों का विश्लेषण विभिन्न दृष्टिकोणों—जैसे नारीवादी, प्रवासी श्रमिक और डिजिटल श्रम—के संदर्भ में किया जाए। इससे श्रम के बदलते स्वरूप की अधिक समग्र और गहन समझ विकसित की जा सकेगी।

*** सह आचार्य,**
समाजशास्त्र विभाग
शहीद कैप्टन रिपुदमन सिंह राजकीय महाविद्यालय,
सवाई माधोपुर (राजस्थान)

10. संदर्भ सूची

1. देसाई, ए. आर. (1984). इंडिया'ज पाथ ऑफ डेवलेपमेंट: ए मार्क्सिस्ट एप्रोच, बंबई: पॉपुलर प्रकाशन, पृ. 40–100।
2. देसाई, ए. आर. (1975). स्टेट एंड सोसाइटी इन इंडिया : एशेज इन डिसेंट, बंबई: पॉपुलर प्रकाशन, पृ. 10–60।
3. बर्धन, प्रणब (1984). द पोलिटिकल इकोनॉमी ऑफ डेवलेपमेंट इन इंडिया , दिल्ली: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, पृ. 85–140।
4. भगवती, जगदीश (2004). इन डिफेंस ऑफ ग्लोबलाइजेशन , न्यूयॉर्क: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, पृ. 90–140।
5. सेन, अमर्त्य (1999). डेवलेपमेंट एज फ्रीडम , नई दिल्ली: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, पृ. 35–80।
6. धनागरे, डी. एन. (1983). पीजेंट मूवमेंट्स इन इंडिया , दिल्ली: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, पृ. 30–85।
7. फ्रैंकल, फ्रांसिन आर. (1978). इंडियाज पोलिटिकल इकोनॉमी , प्रिंसटन: प्रिंसटन यूनिवर्सिटी प्रेस, पृ. 100–160।

8. चक्रवर्ती, सुखमय (1987). डेवलेपमेंट प्लानिंग: द इंडियन एक्सपीरियंस अगरेरियन प्रॉस्पेक्टस इन इंडिया , दिल्ली: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, पृ. 50–95।
9. थॉर्नर, डैनियल (1962). अगरेरियन प्रॉस्पेक्टस इन इंडिया , दिल्ली: यूनिवर्सिटी प्रेस, पृ. 20–75।
10. कास्टेल्स, मैनुएल (1996). द राइज ऑफ द नेटवर्क सोसाइटी , ऑक्सफोर्ड: ब्लैकवेल, पृ. 70–130।
11. स्टैंडिंग, गाय (2011). द प्रिक्रियाट: द न्यू डेंजरस क्लास , लंदन: ब्लूम्सबरी, पृ. 25–90।
12. सासेन, सास्किया (1998). ग्लोबलाइजेशन एंड इट्स डिस्कंटेंट्स, न्यूयॉर्क: न्यू प्रेस, पृ. 50–120।